भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में सामासिक संस्कृति का स्वरूप

डॉ० मोनू सिंह*

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, चौ० चरण सिंह राजकीय महाविद्यालय, छपरौली, बागपत

***Email ID**: monusingh5233@gmail.com*

Accepted: 19.07.2023 **Published**: 01.08.2023

मुख्य शब्दः भारत, विश्व विरासत स्थल।

शोध आलेख सार

भक्तिकाल के साहित्य में सामासिक संस्कृति के स्वरूप को समझने से पूर्व हमें संस्कृति को समझना जरूरी है। रामधारी सिंह दिनकर की पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में संस्कृति शब्द पर प्रकाश डालते हुए पं0 जवाहरलाल नेहरू ने बड़ी सटीक परिभाषा दी है।

पहचान निशान

**Corresponding Author*

© *IJRTS Takshila Foundation*, डॉ० मोनू सिंह, *All Rights Reserved.*

संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं, उनसे अपने आपको परिचित कराना संस्कृति है। **''संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढिकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था का नाम है। संस्कृति आचार–विचार अथवा रूचियों की परिष्कृति का नाम भी है।''**[i] संस्कृति किसी भी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने विचारने कार्य करने के स्वरूप में अन्तर्निहित होती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्ध 'भारत वर्ष की सांस्कृतिक समस्या' में संस्कृति को बहुत सटीक शब्दों में अभिव्यक्ति दी है **''संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।''**[ii]

संस्कृति पर गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपनी पुस्तक 'भारत इतिहास और संस्कृति' में प्रकाश डालते हुए लिखा है– **''जीवन जैसा है उसे अधिक सुन्दर, उदात्त और मंगलमय बनाने की इच्छा आरम्भ से ही मनुष्य में रही है। यही इच्छा जब सामाजिक स्तर पर रूप लेती है, तब वह संस्कृति कहलाती है, जिसके अन्तर्गत**

धर्म, नीति, कला, साहित्य, संगीत आदि आते हैं। संस्कृति समाज की मूल जीवनदायिनी शक्ति है, राजनैतिक शक्ति से भी अधिक है।"[iii]

जब हम भारतीय संस्कृति की यात्रा के विषय में चिन्तन–मनन करते हैं, तो हमें यहाँ एक सुदीर्घ परम्परा देखने को मिलती है। रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में इस बात का उल्लेख किया हैं कि भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रांतियाँ हुई हैं और हमारी संस्कृति का इतिहास इन्हीं चार क्रांतियों का इतिहास है। **"पहली क्रांति तब हुई जब आर्य भारतवर्ष में आए और उनका आर्येत्तर जातियों से सम्पर्क हुआ। दूसरी क्रांति तब हुई जब महावीर और गौतमबुद्ध ने इस स्थापित धर्म या संस्कृति के विरूद्ध विद्रोह किया। तीसरी क्रांति जब हुई जब इस्लाम, विजेताओं के धर्म के रूप में भारत पहुँचा और इस देश में हिन्दुत्व के साथ उसका सम्पर्क हुआ और चौथी क्रांति भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ हुई।"**[iv]

उपर्युक्त टिप्पणी के आलोक में हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति में सामासिकता की प्रवृत्ति बहुत पुरानी हैं, या इस प्रकार भी कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति की बुनियादी प्रवृत्ति ही सामासिक रही है। समाज को गतिशल बनाने में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का योगदान रहता है किन्तु इस सभी में समाज को गतिशील बनाने में सांस्कृतिक प्रक्रिया सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में सामासिक संस्कृति की चर्चा प्रायः तीसरी क्रांति के संदर्भ में ही की जाती है। भारत में मुसलमानों के आगमन के कारण भारतीय संस्कृति में काफी उथल–पुथल हुई, जिसके कारण भारतीय समाज में साम्प्रदायिक वैमनस्य फैल गया, और हिन्दू और मुस्लिमों के बीच तनाव अपने पूरे चरम पर पहुँच गया। भक्तिकाल के साहित्य ने हिन्दू मुस्लिम संस्कृति की टकराहट एवं साम्प्रदायिक विद्वेष को खत्म कर एक–दूसरे में समन्वय एवं सह–अस्तित्व स्थापित करने का कार्य किया।

सामासिक का अर्थ है– मिला–जुला, आपसदारी, आदान–प्रदान। भक्तिकाल के कवियों ने दोनों समुदायों की सांस्कृतिक टकराहट को दूर कर विशुद्ध मानवीय स्तर पर सामासिक संस्कृति की परिकल्पना को मूर्त रूप दिया। निर्गुण भक्त कवियों कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि कवियों ने दोनों समुदायों को सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से निकट लाने का अभूतपूर्व कार्य किया। धर्म और भक्ति के क्षेत्र में ही सही किन्तु सामाजिक जीवन में पहली बार वर्ग, वर्ण, जाति, नस्ल, धर्म और सम्प्रदाय के भेदों तथा बन्धनों को नकारते हुए मानव हृदय में एकात्म तथा भक्ति के संदर्भ में मानव–मात्र की समानता को रेखांकित किया। यह कार्य भले ही भक्ति और ईश्वरोपासना के सीमित क्षेत्र तक रहा किन्तु इसका प्रभाव भेदभाव और चली आ रही वर्ण व्यवस्था की सोच पर भी पड़ा। निर्गुण भक्त कवियों में अधिकांश निम्न जातियों से थे। ये निम्न जातियाँ सदियों से सामाजिक भेद–भाव का शिकार थीं। इन संत कवियों ने धर्म और मजहब के नाम पर चले आ रहे कर्मकाण्डों, पूजा–पाठ, आराधना और उपासना के खोखले तौर तरीकों की जमकर भर्त्सना की और एक मानव धर्म और एक सामासिक संस्कृति की इमारत खड़ी की। कबीर ने राम और रहीम की एकता स्थापित की। इन सन्तों की बानी से हिन्दू और मुसलमान अपनी–अपनी कट्टरता और मजहबीपन को

छोड़कर एक दूसरे के निकट आने लगे। रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी ग्रन्थावली की भूमिका में इस बात को रेखांकित किया है– **''सौ वर्ष पहले कबीरदास हिन्दू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडितों और मुल्लों की तो नहीं कह सकते, पर साधारण जनता राम और रहीम की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों दीन के लोग आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। साधु या फकीर भी सर्वप्रिय वे ही हो सकते थे जो भेदभाव से परे दिखाई पड़ते थे।''** बहुत दिनों तक एक साथ रहते–रहते हिन्दू और मुसलमान एक–दूसरे से अपना हृदय खोलने लग गए थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों प्रवाह में मग्न होने और करने का समय आ गया था। जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिन्दुओं की राम कहानी सुनने को तैयार हो गए थे और हिन्दू मुसलमानों का दास्तानहमजा। ईश्वर तक पहुँचाने वाला मार्ग भी ढूंढने की सलाह भी दोनों साथ बैठकर करने लगे थे। ईधर भक्तिमार्ग के आचार्य और महात्मा भगवत प्रेम को सर्वोपरि ठहरा चुके थे ऊधर सुफी महात्मा मुसलमानों को 'इश्क हकीकी' का सबक पढ़ाते आ रहे थे।[अ] कबीर ने अपनी साखियों और पदों में इसी एकता पर बार–बार बल दिया है–

अव्वल अल्लाह नूर उपाया/कुदरत के सब बन्दे

एक नूर ते सब जग उपज्या/कौन भले कौन मंदे[vi]

कबीर का यह पद तमाम प्रकार के भेद–भुलाकर मानव मात्र को एक होने की प्रेरणा देता है। यह पद **'गुरूग्रन्थ साहिब'** में भी संकलित किया गया है। कबीर अपने समूचे साहित्य में भले ही ऊपर से देखने में कठोर नजर आते हों, भले ही शुक्ल को कबीर की उक्तियाँ कठोर मालूम जान पड़ती हो, किन्तु मानवीय स्तर पर कबीर के काव्य की सम्पूर्ण मनोभूमि सामासिक संस्कृति के बारीक धागों से निर्मित है। वह अपनी एक साखी में कहते हैं– ''अरे इन दोउन राह न पाई। कबीर के अतिरिक्त रैदास की समूची बानियाँ तमाम प्रकार के जाति–वर्ण, भेद आदि को मिटाकर मनुष्यत्व की स्थापना पर बल देती हैं।

जाति–जाति में जाति हैं, जो केतन के पात

रैदास मानुष ना जुड़ सके, जब तक जाति न जात[vii]

संत रैदास ने कृष्ण, करीम, राम, हरि, राघव, वेद, पुराण आदि में सभी भेद भुलाकर सभी को समान भाव से देखने की बात कही है। एक दोहा इस संदर्भ में उल्लेखनीय है–

कृस्न, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा

वेद कतेब कुरान, पुरानन, सहज एक नाहे देखा[viii]

इस संदर्भ में मुक्तिबोध की टिप्पणी बहुत सटीक जान पड़ती है– ''ऊपर–ऊपर मुसलमान और हिन्दू राजाओं में युद्ध चलते–रहते थे, पर समाज में हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के साथ भ्रातृ–भाव से रहने के प्रयत्न कर रहे थे। वे एक दूसरे से विचारों, आदर्शों, प्रथाओं और धार्मिक मान्यताओं का आदान–प्रदान भी कर रहे थे। वे एक दूसरे के जीवन को प्रभावित कर रहे थे। तभी मध्य युग में उधर हिन्दू और मुसलमान राजाओं की टक्कर होती थी लेकिन मुसलमान आदि ब्रजभाषा में कृष्ण काव्य लिख रहे थे और हिन्दू

मुसलमान पीरों और फकीरों की पूजा कर रहे थे। समाज अपने में किसी बाधा को स्वीकार नहीं करता, चाहे वह राजनैतिक हो या धार्मिक।''[ix]

मुक्तिबोध की टिप्पणी से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृति का स्वभाव एवं मूल चरित्र स्वयं में सर्व–समावेशी रहा है। समय–समय पर विभिन्न धर्मों, जातियों, नस्लों एवं मान्यताओं वाले लोग भारत–भूमि पर आए, जिससे भारतीय संस्कृति प्रभावित भी हुई और उन्हें प्रभावित भी किया। भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में यह प्रवृत्ति प्रमुखता से रूपायित हुई है। गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर भारत की संस्कृति को विविध संस्कृतियों का सगामम स्थल मानते थे। मुक्तिबोध ने रविन्द्रनाथ टैगोर को संदर्भित करते हुए बड़ी समीचीन टिप्पणी की है– **''रविन्द्रनाथ ने कहा है कि भारत महा–मानव सागर है, जिसमें कितनी ही सदियों की पावन धारा का जल है। जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं, उसमें सदियों से समन्वय की प्रक्रिया चल रही है, विभिन्न जातियों की संस्कृति के तत्व उसमें मिलते गए और वह बहुत विशाल हो गई है। यह हमारी बड़ी शक्ति है।''**[x]

भारतीय संस्कृति की यही प्रक्रिया भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में फलीभूत हुई है। भक्तिकाल के अधिकांश कवियों में सामसिक संस्कृति के प्रति नैसर्गिक अनुराग देखने को मिलता है। सूफी कवियों ने हिन्दू और मुस्लिम समुदाय के बीच उस तनाव भरे समय में पुल बनाने का अभूतपूर्व कार्य किया। जायसी तो इस संदर्भ में ऐतिहासिक है। हिन्दू–संस्कृति के तीज–त्यौहार, मान्यताएँ, देवी–देवताओं, ग्रह, नक्षत्र एवं लोक में प्रचलित सभी कथा किवदन्तियों का सच्चा चित्र खींचा है।

सूफी कवियों ने तो हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति को निकट लाने का ऐतिहासिक और अभूतपूर्व कार्य किया। जायसी, कुतुबन मंझन आदि सूफी कवि जिस युग में पैदा हुए। वह युग इस्लाम की भारत विजय का था। इस्लाम किस प्रकार एक चुनौती बनकर भारतीय सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के बीच आया और कैसे भारतीय संस्कृति में उथल–पुथल हुई। कबीर जैसे संत कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से और लम्बे साहचर्य के बाद समाज के निचले स्तर पर साधारण हिन्दू मुस्लिम जनता को एक दूसरे के निकट लाने का कार्य किया था उसे जायसी जैसे सहृदय मुसलमानों ने आगे बढ़ाया। तमाम सूफी कवि अपनी धार्मिक आस्थाओं को मानते हुए भी मजहबी कट्टरता से अलग थे। उन्होंने अपने काव्य की कथा सामग्री हिन्दुओं के घरों से ही ली। अपनी रचनाओं में इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है, जिसे स्पर्श करते ही सारे बाह्य रूप, रंग एवं भेद अलग होकर मनुष्य एकत्व के सूत्र में बंध जाता है। जायसी ग्रन्थावली की भूमिका में रामचन्द्र शुक्ल ने इस बात को उद्घाटित किया है–

''इन्होंने मुसलमान होकर भी हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्म स्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होते हुए परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।''

तुलसीदास के काव्य में भी भले ही सतही तौर पर वे तत्व दिखाई नहीं देते किन्तु जब हम तुलसी की समूची मनोभूमि को देखते हैं तो पाते हैं कि तुलसी भी सामासिक संस्कृति में गहन आस्था रखते थे। वे समन्वय के विराट कवि हैं। हिन्दू संस्कृति के अन्दर तमाम भेदाभेद को मिटाकर समन्वय स्थापित करते हैं। इसी संदर्भ में हम तुलसी और रहीम की मित्रता को देखते हैं। दोनों बड़े कवियों की भाषिक, विचार और संवेदनात्मक आदान–प्रदान को देखते हैं, तब हमें तुलसी की सामासिक अवधारणा दिखाई देती है। रहीम कई भाषाओं के ज्ञाता थे। तुर्की, अरबी, फारसी, अवधी आदि। उनकी अवधी पर तो शुक्ल भी मोहित थे। वे अवधी भाषा में 'बरवै' छन्द में 'बरवै नायिका भेद' लिखते हैं, जिससे तुलसी भी रहीम से प्रभावित होकर 'बरवै'' छन्द में 'बरवै रामायण' की रचना करते हैं। तुलसी की अवधी रहीम की अवधी से प्रभावित है। रहीम का काव्य सांस्कृतिक समन्वय का काव्य है। उन्होंने हिन्दू संस्कृति, देवी–देवताओं, मान्यताओं का बहुत सुन्दर सृजनात्मक उपयोग किया है। तुलसी के काव्य की भी मूल चेतना समन्वय है। तुलसी ने एक स्थान पर लिखा भी है–

मांग के खाइबो/मसीद में सोइबो[xi]

तुलसी और रहीम के द्वारा रचित यह दोहा भी सामासिक संस्कृति का श्रेष्ठ उदाहरण है–

सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय
गोद लिए हुलसी फिरे तुलसी सा सुत होय।

इस दोहे का मूल कथ्य कुछ इस प्रकार है। एक विधवा ब्राह्मणी अपनी बेटी के विवाह हेतु मदद के लिए तुलसीदास के पास जाती है, किन्तु तुलसी तो सन्त थे, उनके पास धन कहाँ था, किन्तु तुलसीदास ने उस महिला को अपने मित्र रहीम के पास दोहे की एक पंक्ति लिखकर भेज दी। रहीम अपने नाम के अनुरूप ही दयालु और हमदर्द प्रवृति के थे। रहीम ने उस महिला की उचित मदद भी की और दोहे की दूसरी पंक्ति लिखकर दोहे को पूर्ण किया। यह भक्तिकालीन हिन्दी कवियों का सामाजिक आदान–प्रदान था। रहीम को हिन्दू संस्कृति, देवी–देवताओं, किवदन्तियों, लोक आस्था और विश्वास की गहन एवं सूक्ष्म जानकारी थी, जिसका परिचय उन्होंने अपने रचनाओं में दिया। एक दोहा इस संदर्भ में देखें–

छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उत्पात,
का रहिमन हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात[xii]

उपर्युक्त दोहे में हम देख सकते हैं कि रहीम ने भगवान विष्णु और भृगु ऋषि की कथा का कितना सुन्दर रचनात्मक प्रयोग किया है।

दादू दयाल के दोहों में पदों में समरसता का भाव देखने को मिलता है। ये स्वभाव से बहुत दयालु थे इसलिए इनका नाम दादूदयाल पड़ा। इनके नाम पर 'दादू पंथ' भी चल पड़ा। दादू पंथ की मूल भावना सामाजिक समरसता का संदेश देना था। इस पंथ में केवल हिन्दू ही नहीं बल्कि मुस्लिम और सिक्ख भी अनुयायी थे। दादूदयाल के प्रसिद्ध शिष्य रज्जब मुस्लिम थे। दादू की भक्ति निर्गुण भक्ति थी किन्तु उनके

कई दोहों में निर्गुण एवं सगुण का समन्वय देखने को मिलता है। दादू का व्यक्तित्व और कृतित्व सामासिक मनोभूमि की स्वतस्फूर्त अभिव्यक्ति है।

ऐके अल्लह राम है, समरथ साईं सोइ

मैदे के पकवान सब, खाता होइ से होई[xiii]

संत रज्जब का काव्य भी सामाजिक समरसता का पक्षधर है। मुस्लिम होते हुए भी उनकी साथियों में सगुण निर्गुण का समन्वय और ईश्वर के लिए राम, हरि अल्लाह आदि रूपों में संबोधित किया है। निर्गुण और समुण को तात्विक रूप से एक बताते हुए उन्होंने कहा भी है–

निर्गुण सगुण होते हैं, पंच तत्व अरु प्राण

जन रज्जब इस पेच को, समझै साधु सुजस[xiv]

भक्तिकाल में लालदास भी इसी कड़ी में आते हैं। इनका जन्म मेव जाति में हुआ। इन्होंने मुस्लिम संत गद्दन चिश्ती से दीक्षा लेकर निर्गुण भक्ति का संदेश दिया। इनके नाम पर 'लालदासी सम्प्रदाय' भी चला। इनकी रचनाओं में हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल दिया गया है। मध्यकाल के संत कवियों में इन्होंने मेवात क्षेत्र में धार्मिक पुनर्जागरण का महत्वपूर्ण कार्य किया। वे हिन्दुओं और मुसलमानों में समान रूप से समादृत थे। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को धार्मिक भेदभाव त्यागकर समरस होने की शिक्षा दी–

हींदु तुरको येक ही साहिब, दुवधा दोजग जाई।

झूठी काया झूठी माया, झूठी जगत की बढ़ाई[xv]

रसखान का काव्य भी सामासिक संस्कृति की मिसाल है। उन्होंने मुस्लिम होकर भी कृष्ण काव्य का इतना मनोहारी चित्रण किया है। उनके कृष्ण भक्ति, ब्रजभाषा और ब्रजभूमि सभी उनके काव्य में जीवंत हो उठती हैं।

सभी संत कवियों ने अपनी रचनाओं में हिन्दु–मुस्लिम, जात–पात, ऊँच–नीच का भेदभाव मिटाकर मनुष्यता पर बल दिया। अधिकांश भक्तिकालीन साहित्य की मूल आत्मा सामासिक संस्कृति का नैसर्गिक प्रतिफलन है। निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि भक्तिकाल के साहित्य में सामासिक संस्कृति, कथ्य, भाव, शिल्प, भाषा संस्कृति, उत्तमोत्तम मानवीय मूल्य, मानवीय और प्रेम आदि सभी स्तरों पर अपने उज्ज्वल रूप में अभिव्यक्त होती है।

संदर्भ सूची

i- रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, प्रस्तावना।

ii- सं० नामवर सिंह– हजारीप्रसाद द्विवेदी के संकलित निबन्ध, पृ० 76

iii- गजानन माधव मुक्तिबोधः भारत इतिहास और संस्कृति, पृ० 13

iv- रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लेखक का निवेदन से, पृ0 09

v- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सम्पादन तथा भूमिका, पदमावत, पृ० 26

vi- श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली।

vii- जगदीश शरण रैदास ग्रन्थावली।

[viii]- वही

[ix]- गजानन माधव मुक्तिबोधः भारत इतिहास और संस्कृति, पृ० 13

[x]- गजानन माधव मुक्तिबोधः भारत इतिहास और संस्कृति, पृ० 14

[xi]- तुलसीदास– कवितावली

[xii]- विद्यानिवास मिश्र सं0 रहीम ग्रन्थावली।

[xiii]- दादू ग्रन्थावली, सं० बलदेव वंशी

[xiv]- रज्जव ग्रन्थावली।

[xv]- लालदास की वाणी, पृ० 15

IJRTS
Publications
A Venture of IJRTS Takshila Foundation